अध्ययन सामग्री

विषय- हिन्दी

सेमेस्टर- प्रथम(1) स्नातकोत्तर

प्रश्न पत्र- प्रथम(cc-1)

साहित्यिक हिंदी के रूप में

खड़ी बोली का उदय और विकास

पदनाम- डॉ स्मिता जैन

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

एच डी जैन कॉलेज, आरा

Scanned with CamScanner

साहित्यिक हिन्दी के रूप में खड़ी बोली का उदय और विकास

देश के भिन्न-भिन्न भागों में मुसलमानों के फैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ ही दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी। अमीर खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थी।

औरंगजेब के समय से फारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेख्ता में शायरी भी शुरू हो गई। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य उठ खड़ा हुआ, जिसमें आगे चलकर विदेशी भाषा के शब्दों का मेल भी बराबर बढ़ता गया।

मुगल साम्राज्य के ध्वंस से भी खड़ी बोली के फैलने में सहायता मिली। दिल्ली, आगरा आदि पछाँही शहरों की समृद्धि नष्ट हो चली थी और लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद आदि नई राजधानियाँ चमक उठीं। जिस प्रकार उजड़ी हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि कवि उर्दू शायर पूरब की ओर आने लगे, उसी प्रकार दिल्ली के आसपास के प्रदेशों के हिंदू व्यापारी जातियाँ (अग्रवाल, खत्री आदि) जीविका के लिए लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना आदि पूरबी शहरों में फैलने लगीं।

इसके साथ साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलने लगी। धीरे धीरे पूरब के शहर में भी इन पछाँही व्यापारियों की प्रधानता हो चली। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा भी खड़ी बोली हुई।

यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू ए मुअल्ला नहीं। कुछ लोगों का यह कहना या समझना कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में आई और उसका मूल रूप उर्दू है जिससे आधुनिक हिन्दी गद्य की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई, शुद्ध भ्रम या अज्ञान है।

इस भ्रम का कारण यही है कि देश के परम्परागत साहित्य की जो संवत् 1900 के पूर्व तक पद्यमय ही रहा- भाषा ब्रजभाषा ही रही और खड़ी बोली वैसे ही एक कोने में पड़ी रही जैसे और प्रान्तों की बोलियाँ। साहित्य या काव्य में उसका व्यवहार नहीं हुआ।

पर किसी भाषा का साहित्य में व्यवहार न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व ही नहीं था। उर्दू का रूप प्राप्त होने के पहले भी खड़ी बोली अपने देशी रूप में वर्तमान थी और अब भी बनी हुई है। साहित्य में कभी कभी कोई इसका व्यवहार कर देता था। x x

आज से लेकर [illegible]

के समय तक अपभ्रंश काव्यों की जो परम्परा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की भी झलक अनेक पद्यों में मिलती है।

उनके उपरान्त भक्तिकाल के आरंभ के निर्गुणधारा के संत कवि कबीर आदि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे। कबीर —

"कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।"

अकबर के समय गंग कवि ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक एक गद्य पुस्तक खड़ी बोली में लिखी थी।

अकबर और जहाँगीर के समय में ही खड़ी बोली भिन्न-भिन्न प्रदेशों के शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी। दिल्ली राजधानी होने के कारण जब से शिष्ट समाज में इसका व्यवहार बढ़ा तभी से इधर-उधर कुछ पुस्तकें इस भाषा के गद्य में लिखी जाने लगीं।

इसके पश्चात् विक्रम संवत् 1798 में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा-योग-वाशिष्ठ' नामक ग्रन्थ बहुत साफ-सुथरी खड़ी बोली में लिखा। उसके बाद पं. दौलतराम ने 'पद्मपुराण' का अनुवाद खड़ी बोली में किया। किन्तु इनकी भाषा उतनी परिमार्जित नहीं है जितनी योग-वाशिष्ठ की। अतः इस योग-वाशिष्ठ को परिमार्जित खड़ी बोली गद्य की प्रथम पुस्तक और निरंजनी जी को खड़ी बोली गद्य का प्रथम प्रौढ़ लेखक मान सकते हैं।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली गद्य की समान्य प्रतिष्ठा करनेवालों में चार लेखकों का नाम महत्वपूर्ण है — प्रतिष्ठा करने वाले चार सज्जन ये हैं —

(1) मुंशी सदासुखलाल
(2) इंशा अल्ला खाँ,
(3) लल्लू लाल
(4) सदल मिश्र

ये चारो लेखक संवत् 1860 के आसपास हुए।

(1) मुंशी सदासुखलाल — उन्होंने श्रीमद्भागवत का अनुवाद 'सुखसागर' नाम से खड़ी बोली में किया।

(2) इंशा अल्ला खाँ — ये उर्दू के बहुत प्रसिद्ध शायर थे। इंशा के 'उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी" संवत् 1855 और 1860 के बीच लिखी होगी। उन्होंने चटकीली, मटकीली तथा मुहावरेदार भाषा में बड़े अच्छे ढंग से कहानी कही है। उन्होंने अपनी भाषा को अरबी, फारसी तथा ब्रजभाषा तथा अवधी से मुक्त रखने का प्रण किया, जिसका बहुत कुछ निर्वाह करने में सफल रहे।

(3) लल्लूलाल जी — 1860 में उन्होंने कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से खड़ी बोली गद्य में 'प्रेमसागर' लिखा। जिसमें भागवत दशमस्कन्ध

की कथा कही गई है।

सदल मिश्र

उन्होंने "नासिकेतोपाख्यान" की रचना की। ये भी फोर्ट विलियम कॉलेज के थे। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँ तक हो सका है खड़ी बोली का ही व्यवहार किया है पर इनकी भाषा भी साफ सुथरी नहीं है।

खड़ी बोली गद्य के प्रवर्तक इन चार लेखकों में किसी की भाषा को साफ सुथरी नहीं पाते। किसी में पंडिताऊपन है तो किसी में फारसीपन। तब भी आधुनिक हिन्दी का पूरा पूरा आभास मुंशी सदासुखलाल और सदल मिश्र की भाषा में मिलता है इन दो में भी मुंशी सदासुखलाल की भाषा अधिक महत्व की है। मुंशी सदासुख ने भी लेखनी भी चारों में पहले उठाई अतः गद्य का प्रवर्तन करने वालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए।

इन लेखकों के बाद संवत् 1860 से 1915 के बीच का काल गद्य-रचना की दृष्टि से प्रायः शून्य ही मिलता है। संवत् 1914 के बलवे के पीछे ही हिन्दी गद्य साहित्य की परम्परा अच्छी तरह चली।

1914
1915
1857

उसके पश्चात् ईसाई पादरियों ने अपने धर्म का प्रचार करने के निमित्त बाइबिल का अनुवाद शुद्ध खड़ी बोली

ने करवाया।

फिर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'राजा भोज का सपना', 'वीरसिंह का वृत्तान्त' आदि कई पुस्तकें तैयार करके खड़ी बोली के प्रचार में योग प्रदान किया।

खड़ी बोली गद्य के विकास में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुन्तला नाटक' लिखा। खड़ी बोली गद्य का विशुद्ध रूप 'शकुन्तला नाटक' में देखने को मिलता है।

आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी खड़ी बोली के विकास में योगदान दिया। उन्होंने अपनी एक मात्र पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना खड़ी बोली गद्य में की।

उनके पश्चात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने खड़ी बोली गद्य के विकास में पूर्ण सहयोग दिया।

इस काल के बाद, द्विवेदी युग के लेखकों में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध तथा पं. श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली पद्य में काव्य रचना की, श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' के बाद खड़ी बोली में 'श्रान्त पथिक' (गोल्डस्मिथ के ट्रैवेलर का अनुवाद) निकाली।

Scanned with CamScanner

खड़ी बोली को परिष्कार
तथा स्थिरता प्रदान करने वालों में
महावीर प्रसाद द्विवेदी अग्रगण्य हैं। ये कवि,
आलोचक, निबन्धकार, अनुवादक तथा
सम्पादकाचार्य थे।

द्विवेदी युग के काव्य की मुख्य भाषा ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली बन गई। 'जयद्रथ-वध' की प्रसिद्धि ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दिया। 'भारत-भारती' की लोकप्रियता खड़ी बोली की 'विजय-भारती' सिद्ध हुई।

वस्तुतः द्विवेदीयुगीन काव्य का विकास इस बात का इतिहास है कि खड़ी बोली अपरिपक्वता, अव्यवस्था और अमार्दव से किस भाँति परिष्कार, व्यवस्था और मार्दव तक पहुँची।

हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' तथा 'वैदेही-वनवास' की रचना खड़ी बोली में की।

द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त का खड़ी बोली के स्वरूप-निर्धारण और विकास में इनका अन्यतम योगदान है। वास्तव में ये काव्योपयोगी रूप प्रदान करने वालों में से अग्रगण्य थे। यहाँ तक कि इनकी आरम्भिक रचना 'रग-क्रम वध' में भी खड़ी बोली का सरस, मधुर और कोमल रूप मिलता है।

इस काल में रामनरेश त्रिपाठी तथा लाला भगवानदीन ने खड़ी बोली में काव्य रचना की।

खड़ी बोली छायावाद युग में 'पल्लव' की भूमिका में पंत ने क्रान्ति मचा दी। अतएव खड़ी बोली पूर्णतः परिमार्जित होती गई ...